के पहले और अन्तिम चरण को क्रमशः **योगारुरुक्षु** और **योगारूढ** अवस्था कहा जाता है।

अष्टांगयोग की प्राथमिक अवस्था में मर्यादित जीवन तथा आसनाभ्यास द्वारा ध्यान लगाने के लिए किए जाने वाले प्रयत्न सकाम कर्म ही माने जाते हैं। इन क्रियाओं से क्रमशः इन्द्रियविजय करने के लिए पूर्ण मानसिक समता की प्राप्ति होती है। ध्यानाभ्यास की सिद्धि होने पर उद्वेगकारी मानसिक क्रियाओं का सम्पूर्ण रूप से त्याग हो जाता है।

परन्तु कृष्णभावनाभावित पुरुष तो श्रीकृष्ण का नित्य स्मरण करता हुआ पहले से ही ध्यानमग्न रहता है। नित्य कृष्णसेवा में लगा रहने के कारण उसे सम्पूर्ण प्राकृत-क्रियाओं का त्यागी समझा जाता है।

27/4

यदा हि नेन्द्रियार्थेषु न कर्मस्वनुषज्जते।
सर्वसंकल्पसंन्यासी योगारूढस्तदोच्यते।।४।।

यदा=जिस समय; **हि**=निःसन्देह; **न**=नहीं; **इन्द्रिय-अर्थेषु**=इन्द्रियतृप्ति में; **न**=नहीं; **कर्मसु**=सकाम कर्म में; **अनुषज्जते**=प्रवृत्त होता; **सर्वसंकल्प**=सम्पूर्ण विषयवासना का; **संन्यासी**=संन्यासी; **योगारूढः**=योगारूढ; **तदा**=उस समय; **उच्यते**=कहा जाता है।

अनुवाद

जो विषयवासना को सम्पूर्ण रूप से त्याग कर फिर इन्द्रियतृप्ति अथवा सकाम कर्म में प्रवृत्त नहीं होता, उस पुरुष को योगारूढ़ कहते हैं।।४।।

तात्पर्य

पूर्ण रूप से भक्तियोग के परायण मनुष्य आत्मतृप्त हो जाता है, अतएव इन्द्रियतृप्ति अथवा सकाम कर्म को त्याग देता है। भक्तियोग के अभाव में वह इन्द्रियतृप्ति में अवश्य लगा रहेगा, क्योंकि कर्म किए बिना कोई नहीं रह सकता। कृष्णभावनामृत के बिना स्वार्थ-क्रियाओं की इच्छा बनी रहती है, चाहे वे अपने तक ही सीमित हों अथवा परिवार, राष्ट्र, विश्व आदि के विस्तारित रूपों में हों। कृष्ण-भावनाभावित पुरुष श्रीकृष्ण की प्रसन्नता के लिए ही सब कुछ करता है और इस प्रकार इन्द्रियतृप्ति की ओर से पूर्ण अनासक्त बना रहता है। दूसरी ओर जिसे यह अनुभूति नहीं हुई है, उसको योग-निःश्रेणी के चरम सोपान पर आरूढ़ होने से पूर्व विषयवासना से मुक्त होने के लिए यन्त्रवत् प्रयत्न करना होगा।

28/4

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।।५।।

उद्धरेत्=उद्धार करे; **आत्मना**=चित्त द्वारा; **आत्मानम्**=अपने आत्मा का; **न**=कभी नहीं; **आत्मानम्**=अपने को; **अवसादयेत्**=पतन में पहुँचाए; **आत्मा**=चित्त;